

शकल कब सजीव लगती है?

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

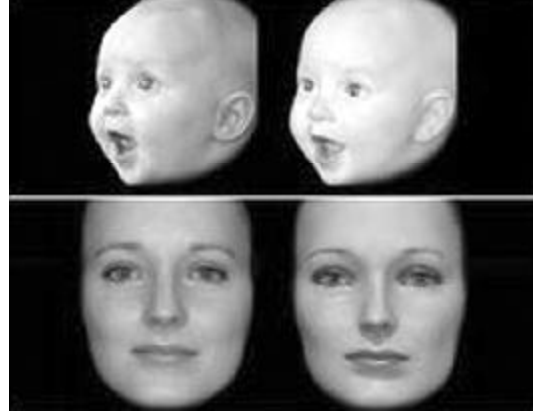
कंप्यूटर एनिमेशन की बढ़ती हुई साइन्स फिक्शन फिल्मों और कार्टून फिल्मों आजकल काफी प्रचलन में हैं (अवतार, मैट्रिक्स, पोलर एक्सप्रेस वगैरह)। फिल्म निदेशक और कला निदेशक भरसक कोशिश करते हैं कि उनके पात्र ज़्यादा से ज़्यादा इन्साननुमा और जीवंत नज़र आएँ। फिर भी कई दर्शक इन कंप्यूटर-जनित छबियों से संतुष्ट नहीं होते। कुछ लोगों ने आलोचना की है कि इन पात्रों में 'मानवीयता' का अभाव है और 'चोगा तो दिखता है मगर आत्मा नहीं'। जीवंतता के मामले में लोग काफी सख्त आलोचक होते हैं।

इन्हीं बातों पर हाल के एक शोध पत्र में विचार किया गया है। यह शोध पत्र है डार्टमाउथ कॉलेज के क्रिस्टीन लूज़र और थेलिया व्हीटली लिखित 'हाऊ, व्हेन एण्ड व्हेअर वी पर्सीव लाइफ इन ए फेस'। अर्थात् हम किसी शकल में जीवन के दर्शन कैसे, कब व कहां करते हैं।

वे लिखते हैं, "चेहरे मनुष्यों का ध्यान आकर्षित करते हैं। मगर यदि सौंदर्य बोध को छोड़ दें, तो वास्तव में लोगों की रुचि चेहरे में नहीं बल्कि उसके पीछे के दिमाग में होती है।"

कितनी सही बात है। क्या इसीलिए जब हम कई फैशन मॉडल्स को रैम्प पर कैटवाक करते देखते हैं, तो लगता है ये कितने निर्जीव हैं, किसी प्लास्टिक गुड़िया की तरह। कोई मुस्कान नहीं, किसी तरह का कोई हाव-भाव नहीं - जीवंतता का पूर्ण अभाव, सिर्फ ऊबे हुए उबाऊ चेहरे।

दूसरी ओर शबाना आजमी और विद्या बालन को देखिए (मेरी पसंदीदा हैं, आपकी पसंद कुछ और हो सकती है)। वे आपको अपनी आंखों से बांध लेती हैं। इससे भी ज़्यादा आकर्षक होते हैं केरल के कथकली नर्तक। वे अपने चेहरे को इतना लीपते-पोतते और छिपा लेते हैं कि कंप्यूटर-जनित छबि ही लगते हैं मगर उनकी आंखें नहीं छिपी होतीं। उन्हीं आंखों में तो मूड और एक्शन होते हैं।



शायरों ने कहा है कि आंखें दिल का आइना हैं। आंखों में झांकिए और आपको पता चल जाएगा कि मैं सच बोल रहा हूँ या झांसा दे रहा हूँ। प्रत्यक्ष व ईमानदार व्यक्तिगत बातचीत और संवाद के लिए आंखों का मिलना ज़रूरी लगता है। जब आप बच्चे के साथ लुका-छिपी का खेल खेलते हैं और पहले अपनी आंखें बंद करते हैं और फिर खोलते हैं तो शिशु भी इस बात को समझते हैं। हर बार जब उन्हें आपकी आंखें दिखती हैं, वे मुस्कराते हैं।

डार्टमाउथ कॉलेज के उक्त शोधकर्ता 'आंखें दिल का आइना' की क्रियाविधि को समझना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 60 छात्र वालंटियर्स लिए। चीन में विकसित फेन्टा-मॉर्फ नामक कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हुए उन्होंने मानवीय और गुड़ियानुमा चेहरों की कई छबियां तैयार कीं। हर मानव चेहरे के लिए उससे मिलती-जुलती गुड़िया नुमा शकल थी। मॉर्फिंग सॉफ्टवेयर का उपयोग करके उन्होंने एक श्रृंखला तैयार की - यह श्रृंखला एक निरंतरता थी जिसमें हर मानवीय व गुड़ियानुमा चेहरे को ओवरलैप करके छबियां बनाई गई थीं। इस तरह जो श्रृंखला बनी उसमें 200 छबियां थीं - पूर्णतः मानवीय से लेकर मानव-गुड़िया के अलग-अलग अनुपातों से होते हुए

पूर्णतः गुड़िया तक।

सबसे पहले 60 छात्र वालंटीयर्स को 200 छबियों की श्रृंखला में प्रत्येक को निम्नलिखित दो गुणों के आधार पर अंक देने को कहा गया: जीवंतता और खुशनुमापन। जीवंतता के मामले में उनसे प्रत्येक छबि को 1 से 7 के बीच अंक देने को कहा गया था (1 यानी निश्चित रूप से सजीव और 7 मतलब निश्चित रूप से निर्जीव)। इसके बाद पर्दे पर इन छबियों को एक-एक करके दिखाते हुए उनसे यह आकलन करने को कहा गया कि 'जीवंतता की सरहद' कहां है अर्थात् वह कौन-सी छबि है जो 'बस, थोड़ी सजीव है'। छबियां दोनों क्रमों में दिखाई गई थीं: मानव से शुरू करके गुड़िया तक और गुड़िया से शुरू करके मानव तक।

दूसरा प्रयोग दो माह बाद किया गया, जिसमें उन्हीं 60 छात्रों में से 29 ने भाग लिया। हरेक को वही छबियां देखने को कहा गया मगर इस बार उन्हें यह आकलन करना था कि क्या वह चेहरा: 1) सोच-विचार करता या कुछ करने की योजना बनाता दिखता है; 2) दर्द महसूस कर सकता है; और 3) उसके पास दिमाग है?

अब परिणामों को देखिए। जीवंतता के परीक्षण में अधिकांश छात्रों का विचार था कि 67 प्रतिशत मानवीय और 33 प्रतिशत गुड़ियानुमा मिश्रित चेहरे तक वह थोड़ा सजीव लगता है। और खुशनुमापन तब नज़र आया जब वह चेहरा 90 प्रतिशत मानव और 10 प्रतिशत गुड़िया था। 100 प्रतिशत गुड़िया चेहरा सबसे कम खुशनुमा पाया गया।

दिमाग के परीक्षण (योजना, दर्द, दिमाग की उपस्थिति) में सहभागियों द्वारा दिए गए अंक जीवंतता परीक्षण के अंकों से मेल खाते थे। किसी चेहरे के पास दिमाग है या नहीं, इस बात का सीधा सम्बंध इस बात से था कि वह चेहरा सजीव लगता है या नहीं। अर्थात् जीवंतता की एक दहलीज है जिसके आसपास हमारे एहसासों में अंतर होता है कि कोई चेहरा सजीव है या नहीं।

मगर सवाल यह है कि हम किसी चेहरे में किस चीज़ को सजीव या दिमागशुदा पाते हैं? आंखें, नाक, मुंह या त्वचा?

यह सवाल तीसरे प्रयोग के मूल में था। इस प्रयोग में उन्हीं 200 छबियों को काटकर इस तरह तैयार किया गया था कि उनमें चेहरे का कोई एक भाग दिखता था: आंखें, नाक, मुंह या त्वचा। हर बार वालंटीयर्स ने आंखों को देखकर तय किया कि वह चेहरा जीवंत है या नहीं। इसके बाद नंबर थे क्रमशः मुंह, नाक और त्वचा के।

इन परिणामों का आशय क्या है? पहला आशय है कि जीवंतता का काफी बड़ा हिस्सा आंखों में होता है। "आंखों वाला पत्थर बगैर आंख के पत्थर से ज़्यादा मोहक होता है।" मूर्तिकार इस बात को भलीभांति जानते हैं। दूसरा आशय यह है कि जब तक आप जीवंतता की दहलीज के नज़दीक नहीं पहुंचते तब तक किसी भी फेरबदल से काम नहीं चलेगा।

यथार्थवाद में एक निरंतरता हो सकती है मगर जीवन में नहीं। यदि आपको लंदन में मेडम टुसॉड के मोमघर में जाने का मौका मिले तो इस बात पर गौर कीजिएगा। मनोवैज्ञानिक इसे श्रेणीबद्ध एहसास कहते हैं। इंद्रधनुष में तरंग लंबाइयों में एक निरंतरता होती है मगर हम इसे स्पष्ट रूप से सात-सात अलग-अलग रंगों से बना देखते हैं।

तीसरा आशय यह है कि यद्यपि आंखें सर्वाधिक सूचना देने वाला लक्षण है मगर किसी चेहरे के बारे में फैसला करने में अन्य लक्षणों का भी सहारा लिया जाता है। जैसे ऊपर उठे हुए होंठ या गुस्से की तपन। मगर इन अन्य सुरागों का अर्थ एक दिमाग व कार्य योजना के संदर्भ में ही है। अंतिम बात यह है कि हम इन्सान तो इस दुनिया में काफी देरी से आए हैं। हमसे पहले के जंतुओं में भी यह क्षमता होती है। कुत्ता इसका एक उदाहरण है। (स्रोत फीचर्स)

स्रोत सजिल्द

वर्ष 2010 के सारे अंक एक जिल्द में उपलब्ध हैं